शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 17
Issue 1&2
15, Jan- July, 2026

भारतीय ज्ञान-परम्परा का नैरंतर्य और हिन्दी-साहित्य

बीज शब्द :

भारतीय ज्ञान-परम्परा, आर्ष ग्रन्थ, संस्कृति-सभ्यता, जीवन-पद्धति, आधुनिक हिंदी-साहित्य, सांस्कृतिक योगदान, धर्म-अध्यात्म, ज्ञान का बहुआयामी विस्तार, वैदिक ऋचाएँ।

भारत की ज्ञान-परम्परा को निर्मल, निश्छल, पावन सलिला के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसमें आर्ष ग्रंथों यथा वेद-वेदांग में वर्णित ऋषियों-मुनियों की आध्यात्मिक अनुभूतियों, आस्थाओं, जीवन मूल्यों, आदर्शों, दार्शनिक मान्यताओं, ज्ञान-विज्ञान पर आधारित मीमांसाओं, सनातन संस्कृति-सभ्यता के महत्त्वपूर्ण संस्कारों, जीवन-पद्धतियों, कर्म, शक्ति-सामर्थ्य की जीवन्त भावनाओं के साथ-साथ उनकी चेतनाओं का समाहार हुआ है। भारतीय ज्ञान की यह विस्तृत बहुआयामी विचारधारा किसी एक तत्त्व को ही लेकर प्रवाहित नहीं होती बल्कि इसने अपने अंदर भारत के समस्त भूभाग में समाहित ज्ञान की अजस्त्र धारा को अंतर्भूत किया है। वैदिक काल में उत्पन्न भारतीय ज्ञान-परंपरा को सम्पूर्ण विश्व की प्राचीनतम परंपराओं में से एक माना जाता है। ज्ञान-विज्ञान, कला-साहित्य, धर्म-अध्यात्म आदि अनेक शाखाओं में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाली यह ज्ञान-परम्परा समय के साथ समस्त मानवता के लिए ज्ञान का असीमित स्त्रोत बनती गई क्योंकि इसमें निरंतर सुधार, परिशोधन, परिमार्जन-परिष्करण और ज्ञान का बहुआयामी विस्तार होता रहा है। वैदिक ऋचाओं के समान ही भारतीय ज्ञान-परम्परा देदीप्यमान है क्योंकि इसमें ज्ञान की ज्योति अपने स्थान पर तो प्रकाशित होती ही है साथ-ही-साथ दूसरी किसी अन्य ज्ञान-परम्परा से सम्पृक्त होकर यह द्विगुणित हो जाती है। ज्ञान परम्परा की इस पयस्विनी में एक महत्त्वपूर्ण स्थान हिन्दी-साहित्य की धारा का भी दिखता है। इस शोधपत्र में हमारा अभीष्ट भारतीय ज्ञान-परम्परा में सम्मिलित इसी हिन्दी साहित्यिक धारा के महत्त्व का अध्ययन-अनुशीलन करना है।

*****

डॉ. ज्ञानेन्द्र मणि त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय(स्वायत्तशासी)
बहराइच, उ.प्र. (भारत)

डॉ. सोनम शुक्ला असिस्टेंट
प्रोफेसर-हिन्दी विभाग मर्यादापुरुषोत्तम पी.जी. कॉलेज,
भुड़सुरी, रतनपुरा, मऊ (उ.प्र.)

भारतीय ज्ञान-परम्परा का नैरंतर्य और हिन्दी-साहित्य

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान-परम्परा क्या है? इस प्रश्न का सरल सहज उत्तर खोजने के लिए हमारी ज्ञान-दृष्टि अविलम्ब वेदों की ओर पहुँच जाती है क्योंकि निस्संदेह 'वेद' ही भारतीय सनातन-संस्कृति, ज्ञान-परम्परा और सभ्यता के मूलाधार हैं। समस्त भारतीय भाषाएं, ज्ञान-विज्ञान के विविध स्वरूप आदि इन्हीं वेदों से नि:सृत हैं। वर्तमान में देववाणी संस्कृत की पुत्री मानी जाने वाली 'हिन्दी' उसी ज्ञान को विभिन्न विधाओं के माध्यम से प्रत्येक ज्ञान-पिपासु तक पहुँचा रही है। ज्ञान-परम्परा के विकास में योगदान देने की इसी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हुए हिन्दी-साहित्य अपने कर्म-पथ पर लगभग हजार वर्षों से अग्रसर है। भारत की सनातनी संस्कृति के अभिन्न अंग प्राचीन जीवनमूल्य, पंचमहायज्ञ, संस्कार, तीनों ऋण, भारतीय आयुर्वेद की चिकित्सीय पद्धतियाँ, भारतीय गुरुकुलों की शिक्षा-पद्धति, वैदिक ऋचाओं में संकलित आध्यात्मिक-दार्शनिक ज्ञान, उपनिषदों में निहित गूढ़ विद्याएँ, पुराणों में समाहित व्यावहारिक ज्ञान तथा कौशल की सामग्रियाँ, शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य की संजीवनी अष्टांग योग-पद्धतियाँ, भारतीय साहित्य में निहित प्रकृति-प्रेम और उनके अमूल्य पोषण-संरक्षण सम्बन्धी विचार धाराएं, दार्शनिक सिद्धांतों-मान्यताओं और व्याख्याओं में व्याप्त आध्यात्मिक ऊर्जाएँ विश्व के कण-कण में भारतीय ज्ञान-परम्परा की ज्ञान-रश्मियों से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित कर रही हैं। इन ज्ञान-परम्पराओं में हिन्दी-साहित्य भी अपने अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करता रहा है जिसके कारण आज भी हिन्दी-साहित्य की निर्झरिणी से नि:सृत ज्ञान-धारा सहृदय को आह्लादित करने में समर्थ है। विविध विधाओं की रश्मियों से युक्त विश्व-ज्ञान का हिन्दी-साहित्य रुपी मार्तण्ड अपनी इन रश्मियों में प्रवाहित होती ज्ञान-धारा से सम्पूर्ण जगत को आलोकित कर रहा है। भारत की ज्ञान-परम्परा का संवाहक यह साहित्यिक सूर्य विभिन्न गद्य विधाओं जैसे कहानी-उपन्यास, संस्मरण-रेखाचित्र, नाटक-एकांकी, रिपोर्ताज, यात्रा-साहित्य, निबन्ध, आलोचना, समीक्षा, गद्यगीत तथा पद्य विधाओं महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, गीत आदि किरणों के माध्यम से विभिन्न अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप में दिग्दर्शित कराता है। परम्परा रुपी संपदा जो निरंतर अपने कर्मपथ पर अगस्रर रहती है वह अपने भीतर निहित ज्ञान को चतुर्दिश प्रसारित करते हुए जनमानस को नवीन चेतना-स्फूर्ति, जागरूकता-सजगता की ओर उन्मुख करती है। सच कहें तो यह परम्परा ज्ञानरूप, चेतना स्वरूप, संस्कृति स्वरूप तथा नैतिक गुण स्वरूप है। इसीलिए यह नित्य नूतन और नवाचारी है। हालाँकि 'परम्परा' का संचरण एक मान्यता के रूप में होता है, जो जीवन को नव्य आलोक प्रदान करती है। एक तरफ जहाँ यह हमें नित नए जीवनमूल्यों से जोड़ने वाली होती है तो दूसरी तरफ यह नए ज्ञान का प्रतीक भी होती हैं। सामान्यत: मान्यताएँ समय के साथ धीरे-धीरे परम्पराओं के रूप में बदल जाती हैं और जनसमुदाय उनका पालन करने लगता है। भारतीय ज्ञान-परम्पराओं की बात की जाये तो ये इस देश की मिट्टी में रची-बसी हुई हैं जो उसके वैदिक-पौराणिक, दार्शनिक-साहित्यिक ज्ञान के रूप में निरन्तर मानव-मन की जिज्ञासा को शान्त करने वाली बनी रही है। साहित्य-परम्परा खासकर हिन्दी की साहित्यिक परम्परा भारत की सर्वाधिक सुदृढ़ और शक्तिशाली ज्ञान-परम्परा के रूप में विकसित हुई है, जो प्राचीनकाल से ही जीवन के सैद्धांतिक और व्यावहारिक ज्ञान का मूल स्रोत रही है। इसने अपनी सरल-सहज अभिव्यक्ति से विभिन्न संस्कृतियों-सभ्यताओं को परिभाषित और परिमार्जित किया है। भारतीय ज्ञान-परम्परा को साहित्यिक धरातल पर उतारकर जन-जन के लिए इस ज्ञान-गंगा में डुबकी लगाना 'हिन्दी-साहित्य' की सरलता-सुगमता और सहजता ने ही संभव किया है।

भारत की ज्ञान-परंपरा का नैरंतर्य

भारतीय ज्ञान-परंपरा का उद्भव और विकास अपने समाज व संस्कृति से हुआ है इसीलिए यह ज्ञान-परंपरा समावेशी, करुणामूलक, समतामूलक आधारों पर टिकी है। चूँकि भारतीय संस्कृति का मूल स्वभाव हमेशा से ही सामासिक संस्कृति का रहा है और यही सामासिकता राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान कराते हुए सम्पूर्ण देश को राष्ट्रीय एकता-अखंडता के अटूट बंधन में बांधता है। धूमिल के शब्दों में कहें तो- "भूखा रहकर भी आदमी अपने हिस्से का आकाश मुस्कुराते हुए ढोता है। अपने देश की मिट्टी को आँख की पुतली समझता है।" **(भाषा की रात)** भारतीय ज्ञान-परंपरा की समृद्धि और इसके स्वर्णिम अतीत का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि प्राचीनकाल से ही दुनिया के अन्य देशों के लिए भारतवर्ष उनकी जिज्ञासा और ज्ञान-पिपासा के शमन का केंद्र रहा है। इसी वजह से इस देश में विश्व के हर कोने से लोग यात्री, व्यापारी, शिक्षार्थी तथा लुटेरे-आक्रमणकारी आदि के रूप में आए किन्तु उनमें से ज्यादातर दूसरी संस्कृति के पालनकर्त्ता होने के बावजूद यहीं इसी संस्कृति में रच-बस गए। संस्कृतियों के इस सम्मिलन का प्रवाह

आज तक जारी है। भारत-प्रवास के क्रम में उन्होंने जो कुछ भी ज्ञान-विज्ञान, दर्शन-कला-साहित्य, योग-आसन-प्राणायाम आदि के बारे में सीखा उसे अपने देश वापस जाकर अपनी भाषा में अनूदित करते हुए अपने देश की ज्ञान-परंपरा को समृद्ध करने का प्रयास किया किन्तु मूलतः उस ज्ञान का उद्गम भारत देश ही रहा है। हिंदी की छायावादी कविता के स्तम्भ कवि जयशंकर प्रसाद अपने नाटक चन्द्रगुप्त में एक विदेशी पात्र कार्नेलिया से कहलवाते हैं-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा"

स्पष्ट है कि दुनियाभर से लोगों का आगमन इस देश में हुआ और जो यहीं रह गए उन सभी को यह मधुमय देश सहारा देता रहा। भारतीय ज्ञान-परंपरा में ऐसे संत साधक कवि और दार्शनिक चिंतक हुए हैं जिन्होंने मनुष्यों की जिजीविषा को जीवित रखने हेतु उनके भीतर मृत्यु के भय को बाहर निकाला। निराला अपनी कविता बादलराग में लिखते हैं- "योग्य जन जीता है पश्चिम की उक्ति नहीं गीता है गीता है स्मरण करो बार बार जागो फिर एक बार" वैदिक ज्ञान-परम्परा की श्रेष्ठता और उसकी उपयोगिता को तुलसीदास अपनी कालजयी कृति रामचरितमानस में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं-

"नीति निपुन सोईपरम सयाना।
श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।"

अर्थात जिसने वेदों के सिद्धांतों को अच्छी प्रकार जान लिया है वही व्यक्ति नीति-निपुण तथा परम बुद्धिमान है। मुगलकाल की शोषणकारी शासन-व्यवस्था को धता बताते हुए तुलसी अपनी कृति कवितावली में लिखते हैं-

"माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो,
लैबे को एक न,दैबे को दोऊ"।

दरअसल यह पूरी-की-पूरी परम्परा गौतम बुद्ध के 'अप्प दीपो भव' अर्थात् 'अपने दीपक स्वयं बनो' से मिलती जुलती है। यही वजह है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा कभी सुप्त नहीं रही बल्कि इसके केंद्र में हमेशा प्रकृति, पर्यावरण और मनुष्य को स्थान दिया गया है। भारत की माटी बहुत उपजाऊ है यही वजह है कि यहाँ के लोगों का मन-मस्तिष्क अत्यधिक गतिशील, सृजनशील और नवाचारी है। हालाँकि भारतीय ज्ञान का पचास प्रतिशत अभी भी यहाँ की मौखिक परंपरा में ही व्याप्त है इसलिए उसे भी राष्ट्रहित में संकलित और अर्जित करना हमारा अभीष्ट होना चाहिए। यह अतिशयोक्ति नहीं कि दुनिया की अन्य प्राचीन संस्कृतियाँ व सभ्यताएँ काल कवलित हो गयीं परन्तु भारत की बौद्धिक ज्ञान-परंपरा उसकी सनातन संस्कृति और सभ्यता में आज भी जीवंत है और निरंतर गतिशील भी है। शायद इसी बात को ध्यान में रखते हुए मो.इकबाल ने लिखा था-

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा यूनान-ओ-मिस्र-ओ-रोमाँ सब मिट गए जहाँ से अब तक मगर है बाकी नाम-ओ-निशाँ हमारा कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जहाँ हमारा"।

सम्पूर्ण विश्व में भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसने कभी किसी अन्य देश की संप्रभुता पर हमला नहीं किया अपितु यहाँ के निवासियों में समस्त विश्व के लिए हमेशा 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना ही प्रबल रही। मानवता के लिए आजतक का सर्वश्रेष्ठ यह सिद्धांत समस्त विश्व को भारत की ही देन है। धर्म-दर्शन, अध्यात्म, आयुर्वेद, योग आदि सभी विद्याओ ं का सर्वप्रथम उद्गम भारत में ही हुआ और यहीं से ये दुनिया के अन्य देशों मे ं प्रचारित-प्रसारित हुआ। चरक और सुश्रुत से लेकर वेद-पुराण-स्मृतियाँ, महाभारत-रामायण, बौद्ध धर्म के 'त्रिपिटक' और जैन धर्म के 'आगम' आदि सभी की जन्मस्थली यहीं रही है। मध्यकाल की बात करें तो पूरी ज्ञान-परंपरा कबीर की इन पंक्तियों में समाहित दिखती है- "संतो भाई आई ज्ञान की आँधी रे!' "पोथी-पढ़ि-पढ़ि जग मुवा पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय"।। "जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिये ज्ञान"। ध्यातव्य है कि देश का मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन हो, आधुनिक युग का स्वतंत्रता-आंदोलन हो या भारतीय नवजागरण; इन सबमें कोई-न-कोई पारस्परिक संबंध दृष्टिगोचर होता है जिससे ज्ञान-परम्परा की अविरलता और निरंतरता दिखती है। महाकवि प्रसाद जी कामायनी में लिखते हैं- "औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।" उक्त पंक्तियाँ "सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे संतु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत"।। की हमारी पूर्व परम्परा की ही आधुनिक अभिव्यक्ति के रूप में व्यंजित होती दिख रही हैं अर्थात यही ज्ञान-परम्परा का प्रवाह है जो सदियों की यात्रा तय करते हुए भी अपनी मानव-कल्याण की मूल अवधारणा (सर्वे भवन्तु सुखिनः) से आज तक संपृक्त है। कामायनी की ही पंक्तियों में प्रसाद जी ने जीवन की विडंबना के रूप में यह तथ्य उद्घाटित किया है कि लोगों के ज्ञान (सोचने) और उनकी क्रिया (करनी) में पर्याप्त विषमता दिखती है-

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा पूरी क्यों

हो मन की एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की" 'इच्छा' और 'ज्ञान' को 'क्रिया रूप' देना (Desire, Knowledge & Action) यह एक ऐसा मूलमंत्र है जो दुनिया को सबसे अलग और विशिष्ट भारतीय मेधा की पहचान कराता है। यही भारतीय मेधा (Talent) समस्त विश्व के नेतृत्व और संचालन हेतु सक्षम है।

क्योंकि- "शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त, विकल बिखरे हों निरुपाय। समन्वय उनका करें समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय"।। (प्रसाद-कामायनी) विश्व-कल्याण का मंत्र, शांति-करुणा, दया, परोपकार, भ्रातृत्व, सहयोग आदि ऐसे आधारभूत मानवीय मूल्य हैं जो पुरे विश्व को एक साथ जोड़ने में काम आते हैं। भारत की ज्ञान-परंपरा और उसका क्रियान्वयन अभी हाल ही में कुछ वर्षों पूर्व गुजरी वैश्विक महामारी 'कोविड-19 के दौर में दुनिया ने एक बार फिर से देख लिया है। समस्त मानव के कल्याणार्थ भारत एक बार फिर अग्रगामी बना यह बात अब जगजाहिर है। हम अपनी ज्ञान-परंपरा को जानें-पहचानें तथा उसका प्रयोग हम अपने राष्ट्र के निर्माण व विकास के साथ-साथ मानव-कल्याण हेतु भी करें। भावी युवा पीढ़ी इस संकल्प को अपने भीतर समाहित करते हुए इसके प्रति गौरव की अनुभूति रखे, यही इस ज्ञान-परम्परा की वास्तविक थाती होगी। भारतीय ज्ञान-परंपरा की सातत्यता को जानने-पहचानने उसे आत्मसात करते हुए राष्ट्र की उन्नति व प्रगति में उसका प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने की आवश्यकता आज की युवा पीढ़ी के कन्धों पर है। गुरु-शिष्य की उत्कृष्ट ज्ञान-परम्परा भारतीय ज्ञान-परम्परा में गुरु-शिष्य की परम्परा का अपना विशिष्ट स्थान है। गुरु-शिष्य प्रणाली के रूप में हमारे प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों ने खुले आकाश के नीचे पेड़ों की छाया में अपने शिष्यों को आध्यात्मिक अनुभूतियों के दर्शन कराए हैं। केवल इतना ही नहीं अपितु उन्होंने विभिन्न प्रकार की विविध ज्ञानरुपी विद्याओं का दान देकर अपने शिष्यों में ज्ञान का दीप जलाया और उनके समस्त संशयों का निवारण बड़ी सहजता से किया। यही कारण है कि आदिकाल से ही लगभग सभी लेखकों, कवियों ने गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये हैं।

(गुरुर्ब्रह्मा ग्रुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः- गुरु स्त्रोत, आदिशंकराचार्य) कबीर तो गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान देते हुए लिखते हैं- "गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाँय बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय"।।

भारतीयों की यह गुरुकुल शिक्षा पद्धति की ज्ञान-परम्परा विश्व में अपनी अमिट छाप छोड़ चुकी है क्योंकि आज पाश्चात्य संस्कृति, भारतीय संस्कृति का समर्थन करते हुए, प्रकृति की ओर लौटने की बात करने लगी है। विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिक और विद्वान अपने शोध कार्यों के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राकृतिक शान्त वातावरण में विद्यार्थियों का बौद्धिक विकास अत्यंत तीव्र गति से होता है। क्योंकि प्राकृतिक वातावरण पूर्णतः स्वच्छ और स्वस्थ होता है। उसका निर्मल, शान्त स्वरूप विद्यार्थियों को न केवल आध्यात्मिक-मानसिक तथा बौद्धिक रूप से अपितु शारीरिक रूप से भी स्वस्थ रखने में सहायक है। अतः आज विश्व भारत की इस परम्परा का हृदय से स्वागत करता है और कहता है कि भारतीयों की परम्पराएँ वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्णतः प्रासंगिक हैं। समाज-सुधार की परम्पराओं का विकास तथा अन्धविश्वासों का खण्डन -भारत की वैदिककालीन ज्ञान-परम्पराएँ अत्यधिक लोकतान्त्रिक व प्राकृतिक थीं क्योंकि बच्चों के मानसिक-शारीरिक,नैतिक-बौद्धिक, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विकास के लिए उसमें बाल्यकाल से ही श्रेष्ठ जीवनमूल्यों का बीजारोपण किया जाता था। किन्तु कालांतर में इन परम्पराओं के साथ-साथ कुछ अन्ध विश्वासों का भी समावेश होता गया, जिसे दूर करने और उसका खण्डन करने का महत्त्वपूर्ण कार्य सदैव 'साहित्य' ने किया। संत कवि कबीरदास ने अपनी साखियों के माध्यम से समाज-सुधार की जिस परम्परा का निर्वहन किया, वह हिन्दी-साहित्य जगत की मूल चेतना और भावधारा में समाहित हो गया। जातीय श्रेष्ठता के दंभ का खण्डन कुछ इस प्रकार करते हुए कबीर कहते हैं- "जो तू बाभन बाभनी जाया। आन बाट ह्वे क्यों नहिं आया। जो तू तुरक तुरकनी जाया। भीतर खतना क्यों न कराया"।। प्रेम की शक्ति और भक्ति-परम्परा प्रेम को मुख्य आधार बनाते हुए प्रेम की शक्ति और भक्ति-परम्परा में गीतों-भजनों आदि के माध्यम से अपनी भक्ति, चिंतन व ईश्वर के प्रति समर्पण के भाव को प्रमुखता से दिखाया गया है। मीराबाई और जायसी के काव्य में इस भक्ति का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार मिलता है। हालाँकि जायसी ने भी अपनी पद्मावत में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अनुभूति कराने का स्तुत्य प्रयास किया है। मीरा तो श्रीकृष्ण को ही अपना सर्वस्व मानकर कहती हैं-
"मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।।"

इसी प्रकार भक्ति-काव्य में कबीर का ब्रह्म भी राम ही है, हालाँकि इनके राम निर्गुण निराकार हैं न कि है दशरथ पुत्र सगुण साकार मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम। भारतीय ज्ञान-परम्परा और

संत-साहित्य भारती की ज्ञान-परम्परा में निहित संत-साहित्य स्वयं में अनूठा और अद्वितीय है। 'संत' किसी से शत्रुता, द्वेष, इर्ष्या, छल या प्रतिस्पर्धा का भाव नहीं रखते बल्कि वे तो इन सब जागतिक माया प्रपंच से निर्लिप्त, निर्विकार होते हैं। वे सदैव परमात्मा की भक्ति आराधना में लीन उपासक होते हैं। इसीलिए कुम्भनदास ने अकबर द्वारा उनको अपने दरबार में बुलाए जाने पर क्षोभ में कहा था- "संतन को कहा सीकरी सो काम"। संत तो सत्य के मार्ग से भटके हुए पथिकों को सत्य के मार्ग पर पुनः लाने की चेष्टा करने वाले महात्मा होते हैं। संतत्व की परिभाषा के लिए कबीरदास का कहना है कि-

"साधू ऐसे चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय"।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान-परम्परा में सम्मिलित संत-साहित्य भी अपने आप में अमूल्य शक्ति को धारित किए हुए है इसीलिए हिन्दी-साहित्य की यह परम्परा समाज को नई दिशा, नया आयाम देने मे ं पूर्णतः सक्षम रही है।

सार-समाहार- हिन्दी-साहित्य ज्ञान का वह कल्पवृक्ष है जिसका प्रत्येक पत्र नूतन कलाओं व भावनाओं से ओतप्रोत है। इसने अपने भीतर 64 कलाओं और 14 विद्याओं को समाहित किया है। सप्तधातुओं की यह वसुधा, चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,अथर्ववेद) छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) के साथ धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, मीमांसा और वेदान्त मिलकर 14 विद्याओं में सम्मिलित तथा 64 कलाओं से सुसज्जित है। इसी से निर्मित विविध ज्ञान-परम्पराएँ समस्त जगत को ज्ञान-विज्ञान, कला-दर्शन, कौशल और अनुसंधान से जोड़ रही हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान-परम्पराओं का विश्व पर आज भी अमिट प्रभाव है। वैश्विक धरातल पर राजनीति या समाजशास्त्र, संस्कृति या सभ्यता, ज्ञान या कौशल, योग या व्यवहार, भाषा या विज्ञान, शोध या अनुसंधान अथवा तर्क या विश्लेषण; लगभग इन सभी क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान-परम्पराएँ अपना प्रभाव अभिव्यक्त कर रही हैं। इन ज्ञान-परम्पराओं से पाश्चात्य संस्कृति, लोकतंत्र की राजनीतिक शिक्षा लेती हैं, तो पतंजलि की योग-शिक्षाएँ उसे स्वास्थ्य की ओर ले जाती हैं। चरक-संहिता उसे अनुसंधान के क्षेत्र में सफल बनाती है, तो 'सामवेद' की संगीत-विद्या उसे मधुर संगीत से जोड़ती है। साथ-ही-साथ हिन्दी की सरलता प्रत्येक व्यक्ति को सहजता-सुगमता और करुणा से जोड़ती है। सच कहें तो भारतीय ज्ञान-परम्परा में हिन्दी-साहित्य वह पुण्यधारा है जिसमें भक्ति, ज्ञान, शिक्षा और समाज-सुधार, बाल-मनोरंजन, युवाओ का मार्गदर्शन जैसी सभी भावनाएँ सम्मिलित हैं। अतः हिन्दी-साहित्य भारत की ज्ञान-परम्परा का महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

संदर्भ-

1. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, संस्करण-1998
2.निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, बाद्लराग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं-2015
3.तुलसीदास, कवितावली, संस्करण-2004
4.प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2008
5.मिश्र, ब्रह्मदेव, शिवकुमार मिश्र (संपा.) धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,सं-2009
6.प्रसाद, जयशंकर, चन्द्रगुप्त (नाटक), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं-2006.
7.डॉ.बलदेव वाणी-कबीर (साहित्य और संदर्भ), प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 1994
8.शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013.
9.द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.

◆◆◆